# श्रमणप्रतिक्रमण : एक विवेचन

*शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.*

आवश्यकसूत्र के प्रतिक्रमण अध्ययन में श्रमण-प्रतिक्रमण से सम्बद्ध पाँच पाठ आये हैं- १. शय्यासूत्र २. गोचरचर्या सूत्र ३. कालप्रतिलेखना सूत्र ४. तैंतीस बोल का पाठ और ५. प्रतिज्ञा सूत्र। आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरीजी म.सा. के प्रवचन एवं विश्लेषण के आधार पर संकलित यह लेख श्रमण प्रतिक्रमण के पाँच पाठों का विवेचन करता है। *-सम्पादक*

श्रावक धर्म की साधना के पश्चात् श्रमणधर्म की साधना आती है। यह साधना तलवार की धार पर चलने के समान है। इस श्रमणजीवन में मात्र वेश परिवर्तन करना ही नहीं होता, किन्तु जीवन परिवर्तन करना पड़ता है। क्योंकि कहा जाता है- "बाना बदला सौ सौ बार, पण बाण बदले तो खेवा पार।" यह मार्ग फूलों का नहीं, शूलों का मार्ग है। यही तो कारण है कि उत्तराध्ययन सूत्र के १९वें अध्ययन में मृगापुत्र को समझाती हुई उनकी माता कहती है- बेटा ! यह श्रमण जीवन अनेक कठिनाइयों से भरा हुआ है। मैं अधिक क्या कहूँ- यह कायरों का नहीं, धीर-वीर-गंभीर, साहसी शूरवीरों का पावन दुर्गम पथ है।

जो व्यक्ति साहसहीन है, इन्द्रियों का दास है, भोगों का गुलाम है, कामना व वासना के पीछे मारे-मारे भटकने वाला है, वह इस कठोर पथ पर कैसे चल सकता है। इस पथ पर पैर रखने के पश्चात् उसे कभी भी न्याय पथ से विचलित नहीं होना है। जैसाकि नीति वाक्य है-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु। लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

शास्त्रकारों ने कहा-

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ ।।

अर्थात् श्रमण लाभ-अलाभ(हानि) में, सुख-दुःख में, जीवन-मरण में, निन्दा-प्रशंसा में समान रहता है। वह मानवों में श्रेष्ठ है।

श्रमण वही है, जो शरीर की आसक्ति पर विजय का प्रयास करता है, जिसका कामना से मन हट चुका है, जो प्राणियों को पीड़ा नहीं देता है और १८ पापों से जिसने किनारा कर लिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण जीवन की अनेकानेक विशेषताएँ हैं। उनमें एक विशेषता है कि भूल-भटक कर भी भूल न करना। अगर प्रमाद आदि दोषों से भूल हो जाय तो तत्काल संभलकर उस भूल का शुद्धीकरण कर लेना चाहिए। उस शुद्धीकरण का नाम जैनागम में आवश्यक एवं प्रतिक्रमण है। जो साधु-साध्वियों के द्वारा प्रतिदिन सायंकाल एवं प्रातःकाल अवश्य करने योग्य है, उसे श्रमण-आवश्यक कहते हैं।

जैसे प्रतिलेखन, प्रमार्जन, वैय्यावृत्त्य, स्वाध्याय और ध्यान श्रमणों के नियत कर्म हैं वैसे ही श्रमण-आवश्यक भी जरूरी है। आवश्यक कार्य तो बहुत होते हैं, जैसे शौचादि, स्नानादि, भोजन-पानादि, पर ये सब शारीरिक क्रियाएँ हैं। किन्तु यहाँ तो हम अन्तर्दृष्टि वाले साधकों के आवश्यक कर्म पर विचार कर रहे हैं। जिनसे कर्ममल एवं विकार हटाये जाते हैं, वे आवश्यक छः हैं- सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान।

श्रमण-आवश्यक के मुख्य पाँच पाठ हैं- १. शय्या सूत्र, २. गोचरचर्या सूत्र, ३. काल प्रतिलेखना सूत्र, ४. तैंतीस बोल और ५. प्रतिज्ञा सूत्र। श्रमण-आवश्यक के मुख्य पाठों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

## १. शय्यासूत्र

श्रमण-आवश्यक का प्रथम पाठ श्रमणों को शिक्षा देता है कि अधिक समय तक सोना, बार-बार करवट बदलना, बिना विवेक पसवाड़ा बदलना, बिना पूँजे हाथ पैर पसारना, जूँ आदि प्राणियों का दबना, अयतना से शरीर को खुजलाना ये सब प्रवृत्तियाँ त्याज्य हैं। ये अतिचार हैं। साथ ही कुछ अतिचार निद्रित अवस्था में भी लगते हैं। स्वप्न में स्त्री-पुरुष को काम-राग भरी दृष्टि से देखना, स्वप्न में रात्रि-भोजन की इच्छा करना, युद्ध आदि देखकर भयभीत होना, ये दूषित प्रवृत्तियाँ हैं। इनके विषय में दोष लगा हो तो उसका मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है।

एक करोड़पति सेठ पाई-पाई का हिसाब रखता था। एक पाई का भी हिसाब नहीं मिलने पर वह उसका कारण खोजता था, क्योंकि वह अर्थशास्त्र के नियम को जानता था कि "जल बिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।" बूँद-बूँद से घट भर जाता है।

इसी प्रकार अपनी एक-एक भूल का निवारण करने वाला साधक धर्म- साधना के क्षेत्र में उच्च कोटि को प्राप्त करता है। भूलों की उपेक्षा करने वाला पतन के गहरे गर्त में गिर पड़ता है। छोटी-बड़ी सभी भूलों के शुद्धीकरण हेतु प्रतिक्रमण की महती आवश्यकता है। सोते-जागते हुए शयन संबंधी कोई दोष लगा हो, मन-वचन-काया से नियमों का उल्लंघन हो गया हो तो उस अतिक्रमण का प्रतिक्रमण कर पाप मुक्त बनना अनिवार्य है।

## २. गोचरचर्यासूत्र

जीवन को सुरक्षित बनाये रखने के लिए भोजन की आवश्यकता स्वीकृत है। आहार के बिना जीवन दीर्घावधि तक टिक नहीं पाता है और शरीर के बिना रत्नत्रय की साधना हो नहीं सकती। What to eat

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजन का उद्देश्य क्या है? How much to eat वह कैसा व कितना हो? When to eat कब खायें? How to eat कैसे खायें? इस पर चिन्तन करना जरूरी है।

शास्त्रकार समझाते हैं कि साधु का भोजन हितकारी हो, पथ्यकारी हो, अल्प मात्रा में हो, स्वास्थ्यवर्द्धक हो और जैन धर्म की मर्यादा के अनुकूल हो। साधु नवकोटि शुद्ध आहार ग्रहण करता है। सच्चा श्रमण ४२ दोष विवर्जित भोजन ग्रहण करता है।

भगवती सूत्र के ७ वें शतक के प्रथम उद्देशक में भगवान् ने भिक्षा के ४ दोष बताए हैं- १. **क्षेत्रातिक्रान्त**- सूर्योदय पहले लेना व पहले खा लेना। यह नियम भोजन संयम के लिए है। २. **कालातिक्रान्त**- प्रथम प्रहर का लिया चौथे प्रहर में भोगना। यह नियम संग्रहवृत्ति पर नियन्त्रण करने के लिए है। ३. **मार्गातिक्रान्त**- दो कोश उपरान्त ले जा कर खाना। यह नियम तृष्णा वृत्ति पर काबू रखने के लिए है। ४. **प्रमाणातिक्रान्त**- प्रमाण से अधिक खाना। जैसे पुरुष के ३२ ग्रास, स्त्री के २८ ग्रास, नपुंसक के २४ ग्रास से अधिक खाना। यह नियम रसों पर विजय मिलाने के लिए है।

आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध, दूसरे अध्ययन, नवम उद्देशक में वर्णन है कि जैसा भी लूखा-सूखा भोजन मिले, साधु को शान्त भाव से बिल में सर्प प्रवेश करता है, वैसे ही खा लेना चाहिए।

"ताक ताक जावे गोचरी लावे ताजा माल।
संयम ऊपर चित्त नहीं, बन रयो कुन्दो लाल॥
ओ मार्ग नहीं साधु रो।।"

दशवैकालिक सूत्र में भी कहा- साधु स्वाद का चटोरा न बने। स्वाद के लिए खाना अज्ञान दशा है। जीने के लिए खाना आवश्यकता है और संयम- साधना के लिए खाना साधना है। अगर वह स्वाद के लिए खाता है तो श्रमणत्व का शुद्धता से पालन नहीं करता है। जैसाकि-

"दूध दही विगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरइ उ तवोकम्मे पावसमणेत्ति वुच्चई॥"

जो नित्य प्रति दूध, दही आदि विगयों का सेवन करता है तथा तप में अरुचि रखता है वह पापश्रमण कहलाता है।

गृहस्थ के घर के किवाड़ बंद हैं तो उन्हें खोलकर आहार के लिए जाना अकल्पनीय है। देखें दशवैकालिक ५वें अध्ययन की १८वीं गाथा।

रास्ते में कुत्ते, बछड़े, बैल बैठे हों, उन्हें लांघकर या उन पर पैर रखकर गिरते-पड़ते आहार ले तो यह प्रवृत्ति सभ्यता-विरुद्ध व आगम-विरुद्ध लगती है। जीवों की विराधना भी होती है। कई घरों में भोजन बनने के बाद कुछ भोजन पुण्यार्थ निकाला जाता है। उसे अग्रपिंड कहते हैं इसका दूसरा नाम मण्डीप्रभृतिका है। ऐसा आहार साधु के लिए अग्राह्य है। देवता के लिए पूजार्थ तैयार किया हुआ भोजन बलि कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस बलि को चारों तरफ फेंकने के बाद साधु को दे और साधु ले तो दोष है, अतिचार है।

अमुक साधु आयेंगे तो उन्हें ही दूँगा, ऐसा सोचकर गृहस्थ ने आहार को अलग निकाल रखा हो और वही साधु ले तो स्थापना प्रभृतिका दोष लगता है। इससे बच्चों को और अन्य बाबा संन्यासियों को अन्तराय लगने की संभावना रहती है।

जिस आहार में सचित्तादि की शंका हो तो उसकी उपेक्षा नहीं करे और न ही ऐसे आहार को ग्रहण करे। बहन को तकाजा करके कहना 'जल्दी बहरा' अपने हल्केपन को प्रकट करना है, यह भी दोष है।

विकृत दही या वैसा ही अन्य पदार्थ जिसका रस चलित है, वह प्राण भोजन है। ऐसी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए, ले तो अतिचार है।

गृहस्थ के घर में जो वस्तु दिखाई दे उसकी ही याचना करनी चाहिए, अदृष्ट पदार्थ की याचना करने पर वह भक्तिवशात् अप्रासुक को प्रासुक बना कर देने की चेष्टा करेगा। इससे जीवों की विराधना होगी।

गोचरी के विषय में एषणा के ३ भेद जानना साधु के लिए जरूरी हैं- १. गवेषणैषणा २. ग्रहणैषणा ३. परिभोगैषणा। गवेषणैषणा- ग्रहण करने के पहले शुद्धि-अशुद्धि की खोज करना। इसके १६ उद्गमादि दोष हैं, जो गृहस्थ की ओर से साधु को लगते हैं।

आहार आदि ग्रहण करते समय शुद्धि-अशुद्धि का खयाल रखना ग्रहणैषणा है। इसके १६ दोष हैं, वे साधु की ओर से साधु को लगते हैं। ये ३२ दोष टालने योग्य हैं। नहीं टाला तो अतिचार है।

परिभोगैषणा के शंका आदि १० दोष साधु और श्रावक दोनों की ओर से मिले-जुले लगते हैं। इन ४२ दोषों को छोड़कर भोजन ग्रहण करने से चारित्र रूपी चदरिया शुद्ध रह सकती है।

इस गोचरचर्या का पाठ गोचरी लाने और करने के बाद अवश्य बोलना चाहिए। ऐसी बात कवि जी म.सा. वाले श्रमणसूत्र पुस्तक में पढ़ने को मिली। हमें गोचरी संबंधी सभी दोषों से बचने के लिए प्रतिक्रमण करना जरूरी है।

## ३. स्वाध्याय-प्रतिलेखना सूत्र

इसके बाद श्रमण के लिए तीसरे पाठ में प्रेरणा दी गई है कि तू चारों काल स्वाध्याय कर और दोनों संध्याकाल में वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण आदि की प्रतिलेखना अच्छी तरह से कर। यदि इस विषय में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार लगता हो तो उस पाप का प्रतिक्रमण करना चाहिए।

अंग्रेजी में कहा है- "Time is money" समय बहुमूल्य धन है। समय की इज्जत ने ही मानव को महान् बनाया है। समय का तिरस्कार मानव जीवन के विकास का तिरस्कार है। जिस काम के लिए जो समय निश्चित किया गया है, वह काम उसी समय कर लेना चाहिए। शास्त्रों में कहा- "काले कालं समायरे।"

जैसे एक सेनापति युद्ध के मोर्चे पर सदा सजग रहता है और शत्रुओं से लोहा लेता है ऐसे ही कर्म-शत्रुओं से लोहा लेने के लिए साधक को हमेशा सजग रहना चाहिए। उत्तराध्ययन सूत्र के २९वें अध्ययन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौतम स्वामी के प्रश्न पर भगवान् ने फरमाया - ''कालपडिलेहणया णं भंते! जीवे किं जणयइ?, काल पडिलेहणया णं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।'' काल की प्रतिलेखना करने से क्या फल मिलता है? भगवान ने फरमाया- ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।

प्रमाद के वशवर्ती बनकर यदि चारों काल स्वाध्याय न की हो या उसमें असावधानी रखी हो तथा दोनों काल प्रतिलेखन न किया हो तो उसके शुद्धीकरण के लिए प्रतिक्रमण किया जाता है।

जैन धर्म में ही नहीं, किन्तु भारतीय संस्कृति में स्वाध्याय का गौरवशाली महत्त्व है। भारतीय विद्यार्थी जब गुरुकुल से पढ़ लिखकर निकलता था, तब गुरु कहते थे- 'स्वाध्यायान्माप्रमदः।' स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करना। आज का विद्यार्थी भी बहुत पढ़ता है- कथा कहानियाँ, अश्लील गीत, उपन्यास आदि। जिनके पढ़ने से जीवन अपवित्र बनता है, विकार भड़कते हैं, ऐसा गन्दा साहित्य मत पढ़ो, पतन की ओर मत बढ़ो। पतन से बचने के लिए किसी महापुरुष के उच्चकोटि के आध्यात्मिक धर्मग्रन्थों को पढ़कर अपने आपको पापमुक्त बनावें।

भगवान महावीर ने तो १२ प्रकार के तपों में स्वाध्याय को आभ्यन्तर तपों में स्थान दिया। अज्ञानी व्यक्ति जिन कर्मों को करोड़ वर्ष में भी नहीं खपा पाता उन कर्मों को ज्ञानी स्वाध्याय के बल पर, मन, वचन काया के संयम के बल पर एक श्वास भर में क्षय कर डालता है। अतः हम स्वाध्याय करें। उसमें प्रमाद न करें। अगर किया हो तो उस अतिचार का प्रतिक्रमण से शुद्धीकरण शीघ्र कर लेना चाहिए।

## ४. ३३ बोल का पाठ

**असंयम का प्रतिक्रमण-** जैसे समुद्र में अनेक तरंगे उठती हैं वैसे ही मनुष्य के मन में कामनाओं की अनेक लहरें ज्वार भाटा की तरह आती रहती हैं। शास्त्रकारों ने कहा- ''इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।'' इच्छाएँ आकाश की तरह अनन्त हैं। द्रौपदी के चीर की तरह उनका पार नहीं है।

कामनाओं से आज तक किसी को सुख नहीं मिला। अगर सुखी बनना है तो कामनाओं से मुक्त होना होगा, इच्छाओं पर संयम करना पड़ेगा और असंयम से मुक्त होना होगा। वह असंयम एक प्रकार का है। संयम का पालन करते हुए भी प्रमादवश अगर असंयम हो गया तो उसका प्रतिक्रमण अवश्य करें।

**राग-द्वेष का प्रतिक्रमण-** कर्म बन्धन के बीज राग द्वेष हैं। जीवन रूपी चदरिया को गन्दा बनाने का काम यही दोनों करते हैं। अतः साधना के क्षेत्र में प्रविष्ट श्रमण साधक से प्रमादवशात् भूल हों तो प्रतिक्रमण कर शुद्ध हो जाना चाहिए।

**दण्ड प्रतिक्रमण-** दुष्प्रयुक्त मन, वचन, काया रूप तीन दंड हैं।

**शल्य एवं गर्व प्रतिक्रमण-** जिनके कारण आत्मा नीरोग नहीं बन सकता ऐसे तीन शल्य हैं- मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य। आत्मा को संसार समुद्र में डुबाने वाले तीन गर्व हैं- ऋद्धि, रस और साता। ये हेय हैं, अतिचार हैं। इनका प्रतिक्रमण करना अनिवार्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**विराधना प्रतिक्रमण-** चारित्र धर्म का निर्मल रीति से पालन करना आराधना है। सम्यक् रीति से पालन नहीं करना विराधना है। ये विराधनाएँ तीन हैं- ज्ञान, दर्शन व चारित्र की विराधना। इनकी विराधना के निराकरण हेतु मिच्छामि दुक्कड़ं कर प्रतिक्रमण किया जाता है।

**गुप्ति प्रतिक्रमण-** 'सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः।' मन, वचन, काया का जो प्रशस्त निग्रह है, वह गुप्ति है। प्रमादवश उनका आचरण करते दोष लगता है तो प्रतिक्रमण किया जाता है।

**कषाय एवं संज्ञा प्रतिक्रमण-** जिनके द्वारा संसार की प्राप्ति हो वे चार कषायें हैं- क्रोध, मान, माया एवं लोभ। संज्ञा ४ हैं- आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञा। इन संज्ञाओं ये चेतना मोहनीय और असाता वेदनीय कर्म के उदय से विकारग्रस्त हो जाती है। ये हेय हैं, इनका प्रतिक्रमण किया जाता है।

**विकथा प्रतिक्रमण-** जो आत्म-धर्म से विरुद्ध ले जाने का कार्य करती हैं वे ४ विकथाएँ हैं- स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा एवं राजकथा। जिस प्रकार कालसर्पिणी से दूर रहा जाता है वैसे ही इन विकथाओं से दूर रहना चाहिए।

**ध्यान प्रतिक्रमण-** चार ध्यानों में दो ध्यान (आर्त्त एवं रौद्र) करने से तथा दो ध्यान (धर्म एवं शुक्ल) के न करने से अतिचार लगता है। अतः उनका प्रतिक्रमण किया जाता है।

**क्रिया प्रतिक्रमण-** कर्मबन्ध कराने वाली चेष्टा क्रिया है। वे पाँच हैं- कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी। इनके अतिचार का प्रतिक्रमण किया जाता है।

**कामगुण प्रतिक्रमण-** काम गुण ५ हैं - शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श। ये सभी हेय हैं।

**महाव्रत प्रतिक्रमण-** सर्वप्राणातिपात से विरमण, सर्व मृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादान से विरमण, सर्व मैथुन से विरमण एवं सर्व परिग्रह से विरमण, इन पाँच महाव्रतों में दोष लगने पर उनका प्रतिक्रमण किया जाता है।

**समिति प्रतिक्रमण-** ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदानभाण्ड-मात्र निक्षेपण समिति एवं उच्चारप्रस्रवणखेलजल्लपरिष्ठापनिका समिति। इन पाँच समितियों के पालन में दोष लगने का प्रतिक्रमण करना चाहिए।

**जीव-निकाय प्रतिक्रमण-** पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय। इन षड् जीवनिकाय की हिंसा विषयक अतिचार लगने पर उसका प्रतिक्रमण अपेक्षित है।

**लेश्या प्रतिक्रमण-** कृष्ण लेश्या, नील लेश्या एवं कापोत लेश्या का आचरण करने पर तथा तेजोलेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या का आचरण न करने पर प्रतिक्रमण अभीष्ट है।

**भय प्रतिक्रमण-** इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय, मरण भय एवं अपयश भय। इन सात प्रकार के भय सेवन का प्रतिक्रमण करना चाहिए।

**मद प्रतिक्रमण-** जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद एवं ऐश्वर्य मद का आचरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने पर श्रमण-श्रमणी को उनका प्रतिक्रमण करना चाहिए।

इसी प्रकार १३ क्रिया, १७ प्रकार का असंयम, १८ प्रकार का अब्रह्म, २० असमाधि दोष, २१ प्रकार का सबल दोष, २९ पाप श्रुत, ३० महामोहनीय कर्मबन्ध के स्थान, ३३ आशातनाएँ हेय हैं, इनका आचरण हो गया हो तो प्रतिक्रमण द्वारा शोधन हो जाता है। ९ ब्रह्मचर्य गुप्ति, १० श्रमण धर्म, १२ प्रतिमाओं का यथाशक्ति पालन न करना, श्रद्धान न करना, विपरीत प्ररूपणा करना अतिचार है। अतः इनका आचरण अभीष्ट है और इनके आचरण न कर पाने का प्रतिक्रमण किया जाता है।

१४ जीवों के भेद, १५ परमाधार्मिक देव, १६ सूत्रकृतांग के अध्ययन, १९ ज्ञाताधर्मकथांग के अध्ययन, २३ सूत्रकृतांग के अध्ययन, २४ देवता, पाँच महाव्रत की २५ भावनाएँ, दशाश्रुतस्कंध, वृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र के २६ उद्देशन काल, २८ आचार प्रकल्प, ३१ सिद्धों के गुण, ये जानने योग्य हैं इन्हें भली प्रकार से नहीं जानने एवं अतिचार लगने का मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। २२ परीषह जानने योग्य व जीतने योग्य हैं, इन्हें नहीं जीता है तो अतिचार है। साधुजी के २७ गुण हैं, उनका भलीभाँति पालन न करना अतिचार है।

३२ योग संग्रह में जो जानने योग्य हैं, उन्हें ठीक से न जानना, उपादेय को ग्रहण न करना तथा हेय को न छोड़ना ही अतिचार है, उसका प्रतिक्रमण किया जाता है।

अरिहंतों की आशातना से लेकर ज्ञान के १४ अतिचार तक ३३ आशातना हो जाती है। उन ३३ आशातना के अतिचार का प्रतिक्रमण किया जाता है। यह प्रतिक्रमण का विराट् रूप है, इस चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में बिन्दु में सिन्धु समाया हुआ है।

## ५. प्रतिज्ञा पाठ (निर्ग्रन्थ प्रवचन सूत्र)

श्रमण सूत्र का पाँचवाँ प्रतिज्ञा पाठ है। इस पाठ में सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक सबको नमन किया गया है। जिस साधक को जैसी साधना करनी हो वह उसी की उपासना करता है। अर्थोपार्जन का इच्छुक लक्ष्मी की पूजा करता है। विद्योपार्जन करने का रसिक सरस्वती को मानता है तो जैन धर्म को मानने वाला ऋषभ देव से लेकर महावीर तक की स्तुति करता है।

हमारे शासनपति महावीर हैं। महावीर को कौन नहीं जानता ? जब चारों ओर अज्ञान व हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था, तब भगवान् महावीर ने अहिंसा की दुन्दुभि बजाई थी। हजार धाराओं से करुण रस बरसाया था। उनकी वाणी निर्ग्रन्थ प्रवचन कहलाती है। उस पर साधक को श्रद्धा, प्रतीति व विश्वास करना चाहिए। धर्ममार्ग पर दृढता से स्थिर रहने पर ही जीव सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं सभी दुःखों का अन्त कर निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं।

जैन धर्म के अहिंसावाद, अनेकान्तवाद और कर्मवाद सिद्धान्त इतने प्रमाणिक हैं एवं सत्य की गहरी व मजबूत नींव पर टिके हुए हैं, उन्हें कोई झुठला नहीं सकते। वे सिद्धान्त सत्य हैं। छद्मस्थों के द्वारा बताई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई बात पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। जो केवली हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, उनके द्वारा कभी भूल हो ही नहीं सकती। अतः उनके द्वारा कथित सभी बातें विश्वसनीय हैं। यही मार्ग दुःखों से हटाने वाला है।

धर्म-साधना करने वाले ही सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होते हैं, सभी दुःखों का अन्त करते हैं। इस श्रमणसूत्र के पाँचवें पाठ में ८ प्रतिज्ञाएँ ली गई हैं।

१. असंयम से निवृत्त होना। क्योंकि परिज्ञा दो प्रकार की है। ज्ञ परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा। ज्ञ परिज्ञा के द्वारा असंयम के स्वरूप को जानना और प्रत्याख्यान परिज्ञा के द्वारा असंयम का त्याग करना, संयम को स्वीकार करना।

२. अब्रह्म को जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से अब्रह्मचर्य से अलग हटना, ब्रह्मचर्य स्वीकारना।

३. अकृत्य को ज्ञ परिज्ञा से जानना तथा प्रत्याख्यान परिज्ञा से अकृत्य का पच्चक्खान करना, कृत्य को स्वीकारना।

४. अज्ञान के सही स्वरूप को जानना और प्रत्याख्यान परिज्ञा से ज्ञान को स्वीकारना।

५. अक्रिया के स्वरूप को ज्ञ परिज्ञा से जानना, प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागना और क्रिया को स्वीकारना।

६. मिथ्यात्व को जानना और त्यागना एवं सम्यक्त्व को स्वीकार करना।

७. अबोधि को ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागना एवं बोधि को स्वीकार करना।

८. अमार्ग को ज्ञ परिज्ञा से जानकर त्यागना और मार्ग को स्वीकार करना।

ये जो आठ प्रतिज्ञाएँ साधक स्वीकार करता है, उनका उसे स्मरण है अथवा नहीं। किनका प्रतिक्रमण कर लिया है और किनका नहीं किया है, इस प्रकार स्मरण करके सम्बद्ध अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है।

## श्रमण का चिन्तन

- मैं श्रमण हूँ। मैंने साधना के लिए भूतकाल में भी परिश्रम किया था। वर्तमान में भी परिश्रम कर रहा हूँ। भविष्यकाल में भी करूँगा।
- मैं संयत हूँ। संयम का सम्यक् रीति से पालन करने वाला हूँ।
- मैं विरत हूँ यानी सब प्रकार के सावद्य पापों से अलग हटने वाला हूँ।
- भूतकाल में पाप किया है, तो उस पाप की गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और आत्मसाक्षी से निन्दा करता हूँ। वर्तमान एवं भविष्यकाल के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध होता हूँ कि आगे पाप नहीं करूँगा, ऐसे प्रत्याख्यान ग्रहण करता हूँ। (सच्चा साधक वही माना जाता है जो तीनों कालों में संभल-संभल कर चलता है। पाप पंक को धोकर जीवन रूपी चदरिया को निर्मल बनाता है।)
- मैं निदान रहित हूँ। निदान का अर्थ आसक्ति है। भोगासक्ति को हम जहरीला घातक फोड़ा कह सकते हैं जैसे फोड़ा अन्दर ही अन्दर शरीर को सड़ा कर खोखला कर देता है, वैसे ही आसक्ति साधक जीवन को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बर्बाद कर देती है।

- जैन श्रमण निदान रहित होता है, उन्हें देवी, देवता या चक्रवर्ती का वैभव लुभा नहीं सकता।
- मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। सम्यग्दर्शन के द्वारा ही साधक हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य का विवेक कर सकता है। दृष्टि शुद्ध न हो तो चतुर्गति रूप संसार में भटकने का अवसर आ सकता है।
- मैं झूठ व छल कपट से रहित हूँ।
- जम्बूद्वीप, धातकी खंड द्वीप और अर्ध पुष्कर द्वीप ये अढाई द्वीप हैं। १५ कर्मभूमियाँ हैं- ५ भरत, ५ ऐरवत, ५ महाविदेह। इन्हीं क्षेत्रों में मनुष्योत्पत्ति होती है। मनुष्य ही साधु बनते हैं। जितने भी साधु रजोहरण गोच्छक के धारक हैं, पंच महाव्रत के पालक हैं तथा १८ हजार शीलांग रथ के धारक हैं, उन साधुओं को सिर झुकाकर अन्तर्मन से नमस्कार करता हूँ।

श्रमण प्रतिक्रमण करने से हमारे जीवन में तीन लाभ होते हैं- (१) आस्रव के छेद रुक जाते हैं। (२) जीवन में सजगता आती है। (३) चारित्र विशुद्ध बनता है।

प्रतिष्ठित नगर के जितशत्रु राजा को वृद्धावस्था में पुत्र का जन्म हुआ। अत्यधिक स्नेह होने से देश के प्रसिद्ध वैद्य को बुलाकर कहा- ऐसी कोई दवा दो जो मेरे कुल के लिए अत्यन्त लाभदायक हो।

पहले वैद्य ने कहा- कुंवर के शरीर में कोई रोग होगा तो मेरी दवा उसको नष्ट कर देगी। किन्तु बीमारी नहीं होगी तो नई बीमारी पैदा कर देगी और वह मृत्यु से बच नहीं सकेगा। राजा ने कहा- आप तो कृपा रखिए, पेट मसल कर दर्द पैदा करना है।

दूसरे वैद्य ने कहा- मेरी दवा बहुत अच्छी रहेगी। रोग होगा तो नष्ट कर देगी और रोग न हुआ तो न लाभ होगा न हानि होगी।

राजा ने कहा- आपकी औषधि राख में घी डालने जैसी है। नहीं चाहिए।

तीसरे वैद्य ने कहा- मेरी औषधि ठीक रहेगी। प्रतिदिन खिलाते रहो। रोग होगा तो नष्ट हो जायेगा। यदि कोई रोग नहीं हुआ तो भविष्य में नया रोग नहीं होगा। राजा ने तीसरे वैद्य की दवा पसंद की।

तीसरे वैद्य की औषधि की तरह दोष लगा हो तब भी और न लगा हो तब भी प्रतिक्रमण लाभदायक है। श्रमण जीवन में हिंसा झूठ, चोरी आदि का अतिचार लगा हो तो प्रतिक्रमण से वे सब दोष दूर हो जायेंगे।

अतिचार रोग हैं। प्रतिक्रमण औषधि का काम करता है। दोष लगा हो तब भी और न लगा हो तब भी जीवन शुद्ध, निर्मल और पवित्र बनता है तथा भविष्य में दोष लगने की संभावना कम हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org